पार्वती मंगल (सं0–1649), जानकीमंगल (सं0–1643), रामाज्ञा प्रश्न (सं0–1669), कवितावली, गीतावली (सं0–1627), कृष्ण गीतावली (सं0–1626), विनय पत्रिका, दोहावली (सं0–1640)।

गोस्वामी जी ने अपने समय की जनता के हृदय से हृदय मिलाकर उसके आंतरिक भावों की अभिव्यक्ति की है। ऐसा कोई रस नहीं जिसका उनके काव्य में पूर्ण परिपाक न हुआ है, ऐसा कोई भाव नहीं जिसकी सुंदर व्यंजना न हुई हो। तुलसी ने छंद रचना की सभी प्रणालियों को अपनाया। उनकी भाषा, भाव, शैली एवं छंद–रचना के विषय में विचार करने पर हम कह सकते हैं कि तुलसीदास अपने समय के प्रतिनिधि कवि हैं। तुलसी की प्रतिभा सर्वतोन्मुखी रही। उन्होंने अपने काव्य में भक्ति के साथ, शील, आचार, मर्यादा और लोकसंग्रह का संदेश दिया था। हिन्दी में लिखने के कारण तुलसीदास को पंडित समाज के विरोध का सामना करना पड़ा; किन्तु उन्होंने उसकी परवाह न की। वे उत्तम भाव चाहते थे, वे भाषा के पीछे नहीं पड़े थे। इस मामले में वे बड़े उदार और प्रगतिशील थे। जैसे –उनका सिद्धांत स्पष्ट था –

"का भाषा का संस्कृत, भाव चाहिए साँच।
काम जो आवै कामरी, का लैं करें कमाँच।।" [7]

संदर्भ–निर्देश :

1. 'त्रिवेणी', संपादक–कृष्णानंद, पृ0 सं0–07.
2. .'त्रिवेणी', संपादक–कृष्णानंद, पृ0 सं0–09.
3. 'त्रिवेणी', संपादक–कृष्णानंद, पृ0 सं0–39.
4. हिन्दी साहित्य एक परिचय –डॉ0 फणीश सिंह, पृ0 सं0–75.
5. 'त्रिवेणी', संपादक–कृष्णानंद, पृ0 सं0–65.
6. 'त्रिवेणी', संपादक–कृष्णानंद, पृ0 सं0–67.
7. हिन्दी साहित्य एक परिचय –डॉ0 फणीश सिंह, पृ0 सं0–75.

उग्रवाद–भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन

डॉ. अजय कुमार सिंह *

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन

1. उदारवाद 2. उग्रवाद 3. आतंकवाद

यह निर्विवाद रूप से हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में, उदारवाद, उग्रवाद और आतंकवाद तीनों की अपने–अपने महत्त्व है और हम एक दूसरे के महत्त्व को थोड़ा भी कम नहीं कर सकते। लेकिन ये मूलतः यहाँ – उग्रवाद और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर प्रकाष डाल रहा है।

1885 ई0 में भारतीय राष्ट्रीय कॉग्रेस की स्थापना हुई। इस दल ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व करना प्रारंभ किया। 1885 से 1905 तक कांग्रेस पर दादा भाई नॉरोजी, पीरोज षाह मेहता, दीनषा वाचा, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, वोमेष बनर्जी और गोपाल कृष्ण गोखले जैसे नेता का प्रभाव था। वे लोग उदारवादी और परिमित राजनीति और साधनों में विश्वास करते थे। इसी कारण उन्हें उदारवादी की संज्ञा दी गयी। ये नेता क्रमिक सुधार और अंग्रेजों से समन्वय करके स्वतंत्रता प्राप्त करने के पक्ष में थे। अतः उन्होंने संवैधानिक और शांतिपूर्ण तरीकों को अपनाने पर बल दिया। रानाडे ने इन्हें विचार दिया था कि उस वस्तु की अथवा उन आदेशों की झूठी आशा ही मत करो जो मिलनी असंभव है।

किन्तु बीसवीं सदी के प्रारंभ में कांग्रेस में एक नए तरूणदल का उदय हुआ जो उदारवादी नेताओं के उद्देश्यों और साधनों के आलोचक थे। वे तरूण लोग चाहते थे कि कांग्रेस का ध्येय स्वराज्य होना चाहिए जिसे वे आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता से प्राप्त कर सकें। इन नेताओं में पंजाब के लाला लाजपत राय, महाराष्ट्र के लोकमान्य तिलक और बंगाल के विपिन चन्द्र पाल प्रमुख थे जिन्हें संक्षेप में लाल–पाल–बाल कहा जाता है।

इनके साधनों में प्रमुख थे– स्वदेशी, बहिष्कार, अहिंसात्मक प्रतिरोध, राष्ट्रीय शिक्षा, हड़ताल, प्रदर्शन इत्यादि। उग्रवादियों ने उदारवादियों के साधनों को भिक्षावृत्ति की संज्ञा दी। उन्होंने इन साधनों को केवल समय की बर्वादी बताया। तिलक ने गोखले के संवैधानिक साधनों को प्रभावहीन बताया क्योंकि हमारे देश

***असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, अल्लामा ईकबाल कॉलेज, बिहारशरीफ, नालन्दा, (बिहार)**

में कोई संविधानिक साधनों को प्रभावहीन बताया क्योंकि हमारे देश में कोई संविधान नहीं है। उन्होंने कहा कि केवल प्रार्थना पत्र और विरोध करने से कोई लाभ नहीं होने वाला। उनके अनुसार आत्मनिर्भरता के अभाव में विरोध भारतियों की कोई सहायता नहीं करेगा।

उग्रवादी के साधनों को निम्नांकित ढ़ंग से प्रस्तुत किया जा सकता है –

1. स्वदेशी – प्रारंभ में स्वदेशी तकनीक का प्रयोग आर्थिक बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओं के रूप में किया गया। किन्तु बाद में इसे भारतीय विचारों के विकास के लिए अपनाया गया। इसे स्वतंत्रता प्राप्ति का साधन बनाया गया। उग्रवादियों ने आम जनता को आत्मनिर्भर एवं स्वतंत्र रहने की शिक्षा दी जिससे उन्हें स्वतंत्र मनुष्यों के अधिकार और विशेषाधिकार मिल सके। तिलक के शब्दों में, '' आर्यों के देश को स्वीकार कराने की मांग ही स्वदेशी आन्दोलन है।'' स्वदेशी एक आर्थिक, राजनीतिक तथा आध्यात्मिक अस्त्र है। स्वदेशी व्यवहार में वन्देमातरम् है।

2. बहिष्कार तथा निष्क्रिय प्रतिरोध : बहिष्कार प्रारंभ में एक आर्थिक साधन था। इसमें ब्रिटेन द्वारा निर्मित वस्तुओं को खरीदने से इन्कार करने की बात निहित थी। किन्तु शीघ्र ही यह एक राजनीतिक साधन भी बन गया। उग्रवादियों ने देखा कि ब्रिटिश शासन भारतीयों के सहयेाग पर ही टिका हुआ है। इसलिए शासन के साथ असहयोग करना आवश्यक है। अतः धीरे–धीरे बहिष्कार ने एक राजनीतिक अस्त्र का रूप ले लिया। इसका अर्थ था निष्क्रिय प्रतिरोध। इसके प्रभावकारी प्रभाव के लिए साहस और आत्म बलिदान की आवश्यकता थी। लोकमान्य तिलक ने निष्क्रिय प्रतिरोध के उद्देश्यों का वर्णन किया है जो निम्नलिखित थे –

1. अंग्रेजी शासन के जादू समाप्त करना जिसके चलते भारतीय जनता अंग्रेजी सरकार के आदेश का पालन करती थी।
2. आम जनता में स्वतंत्रता के लिए निरपेक्ष प्रेम की भावना उत्पन्न करना जिसके साथ आत्म बलिदान की भावना जुड़ी हुई हो।
3. भारत के लिए स्वतंत्रता की प्राप्ति करना।

निष्क्रिय प्रतिरोध की निम्नांकित विशेषतायें थी :

1. निष्क्रिय प्रतिरोध का अर्थ राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए व्यापक जन समर्थन प्राप्त करना था। सरकार के साथ असहयोग करना भी इसका एक तत्व था। लेकिन इसका अर्थ गैर कानूनी साधनों का प्रयोग नहीं था।
2. यह अहिंसात्मक था। इसमें हिंसा का कोई स्थान नहीं था। इसमें संयुक्त, लोकप्रिय तथा अहिंसक कार्य समाहित थे।
3. यह आत्मनिर्भरता, आत्म सहायता और आत्म संयम का भी एक साधन था।

3. जनता को संगठित तथा शिक्षित करना : उग्रवादियों ने जनता के साथ निरंतर सम्पर्क बनाए रखने और उन्हें संगठित, शिक्षित और जागरूक बनाए रखने की तकनीक अपनायी।

4. जनसभायें आयोजित करना और राष्ट्रीय उत्सव मनाना : बाल गंगाधर तिलक ने समय–समय पर जनसभायें आयोजित करने और राष्ट्रीय उत्सव मनाने पर बल दिया। राष्ट्रीय उत्सवों में गणेश उत्सव और शिवाजी उत्सव शामिल थे।

5. प्रशासन प्रशासन के संचालन में असहयोग : उग्रवादी नेताओं ने जनता को प्रशासन चलाने में सरकार और नौकरशाही के साथ असहयोग करने की शिक्षा दी। इस असहयोग में निम्नांकित बातें शामिल थी।

1. भू–राजस्व न देना, आन्तरिक कानून एवं व्यवस्था बनाये रखने में सहायता न करना और देश के बाहर युद्ध में ब्रिटेन के लिए शामिल न होना।
2. ब्रिटिश सरकार के साथ कोई सम्पर्क न रखना और किसी भी कार्य के लिए सरकार के समक्ष प्रार्थना पत्र न देना।
3. अवैतनिक पदों, विधायी संस्थाओं और स्थानीय संस्थाओं के चुनाव का बहिष्कार।
4. सेवाओं एवं न्यायालयों का बहिष्कार।
5. अपनी जनअदालतों का गठन।

6. राष्ट्रीय शिक्षा : राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था भी उग्रवादियों का एक साधन था। इसके अन्तर्गत पूरे राष्ट्र में राष्ट्रीय विद्यालयों और महाविद्यालयों की स्थापना करना और उनमें छात्रों को राष्ट्रीय शिक्षा देना शामिल था।

उपसंहार :

उग्रवादियों के द्वारा बताए गये साधनों का व्यापक प्रभाव गाँधी युग के राष्ट्रीय आन्दोलन पर पड़ा। टी॰ एल॰ शे॰ के शब्दों में– ''इस प्रकार तिलक का अहिंसक निष्क्रिय प्रतिरोध महात्मा गाँधी के द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन का अग्रसूचक था। महात्मा गाँधी और उनके अनुयायियों ने उग्रवादी के स्वराज्य, बहिष्कार और अहिंसात्मक निष्क्रिय प्रतिरोध की धारणाओं को कुछ संशोधनों के साथ अपना लिया। गाँधीजी ने निष्क्रिय प्रतिरोध के स्थान पर सत्याग्रह की धारणा प्रतिपादित की। किन्तु बहिष्कार, स्वदेशी और स्वराज्य को ज्यों–का–त्यों अपना लिया।

संदर्भ सूची :

1. पालन्दे, एम.आर. (सम्पादित) सोर्स मेटिरियल फॉर ए हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मुवमेंट इन इंडिया, भाग–2 में रानाडे के विचार, पृ0 848–49

2. अरविन्द : वन्दे मातरम्मई 3, 1908
3. तिलक : 'केसरी' फरवरी 12, 1907
4. तिलक : हिज स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स, पृ0 44
5. ग्लीलिंग्स : फ्रॉम तिलक राईटिंग्स एण्ड स्पीचेच, पृ0 322
6. जोग, एन0 जी0 : लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, पृ0 100
7. रामगोपाल : लोकमान्य तिलक, पृ0 238
8. रामगोपाल : लोकमान्य तिलक, पृ0 238–39
9. शे0, टी0 एल0 : दि लिगेसी ऑफ दी लोक मान्य, पृ0 160

वैदिक युग में धर्म एवं समाज : एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ. राखी रानी*

धर्म का अर्थ वस्तुओं के तत्वों को समन्वित रखने की शक्ति और क्रिया है। ऋग्वैदिक आर्यो ने सम्पूर्ण विश्व में एक ही विश्व–व्यवस्था की कल्पना की थी, जिसे उन्होंने 'ऋत्' कहा है। 'ऋत्' ही धर्म का ऋग्वैदिक स्वरूप है। इस विश्व–व्यवस्था के नियामक को उन्होंने 'वरूण' कहा है। उससे प्रार्थना की गई है कि यदि हम अपने मित्रों, अतिथियों, बंधु–बांधवों या परिवार के सदस्यों के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन नही करें तो वरूण हमें दण्ड दें। यदि हमने भूल से भी किसी को धोखा दिया है तो हमें मुक्त करें। ऋग्वेद में ही अन्यत्र 'धर्म' का प्रयोग विश्व को धारण करने के अर्थ में हुआ है। स्पष्ट है कि ऋग्वैदिक काल में धर्म या ऋत् का मुख्य उद्देश्य समाज में सुव्यवस्था स्थापित करना था।

ऋग्वेद के अन्तिम सूक्ति में धर्म पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि सभी मनुष्यों को मिलकर चलना चाहिए, सबको ज्ञानी बनना चाहिए और सबको अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए–

''संगच्छध्वं संवद्ध्वं संवौ मनांसिजानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।''

ऋग्वेद 10.191.2

''समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेशाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।''

ऋग्वेद 10.191.3

इस प्रकार सामाजिक संगठन तभी सम्भव है जब सबके विचार सत्य पर आधारित हों। ऋग्वेद में कहा गया है कि सोम सत्य की रक्षा करता है और असत्य को नष्ट करता है। पक्षपात रहित और न्याय पर आधारित आचरण से ही मनुष्य की व्यक्तिगत और सामाजिक उन्नति हो सकती हैं। इसी को हम धर्म कहते है।

इसी प्रकार के समन्वय की भावना हमें यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के पहले मंत्र में मिलती है। इसके अनुसार पृथ्वी पर यह सब जो कुछ भी चराचर वस्तु

***असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, रामलखन सिंह यादव इण्टर कॉलेज, गया, बिहार**